International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

प्राचीन भारतीय भोजन व्यवहार एवं नियम

(वैदिक काल से मार्य काल तक)

डा. अजय कुमार, सहायक प्राध्यापक
(इतिहास विभाग)
हिन्दु महाविद्यालय, सोनीपत

प्राचीन भारतीय साहित्य में भोजन सम्बंधी नियम, शुद्ध–अ"ाुद्ध भोजन, वर्ण अनुसार भोजन व्यवहार, अतिथि–सत्कार आदि विषयों पर अनेक उल्लेख मिलते हैं। इन वर्णनों से भारतीय संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर प्रका"ा पड़ता है इस प्रकार का अध्ययन न केवल रोचक है अपितु भारतीय संस्कृति के अनेक पहलूओं को समझने में ज्ञानवर्धक भी सिद्ध होता है।

वैदिक काल में भोजन को पूजनीय कहा गया था क्योंकि इसी से व्यक्ति कार्य करने तथा अपनी इन्द्रियों का प्रयोग करने में समर्थ होता है।[1] भोजन की सम्पूर्ण प्रक्रिया में स्वच्छता का होना अति अनिवार्य माना गया। भोजन करने से पहले प्रार्थना का पाठ किया जाता था।[2] भोजन ग्रहण करने से पहले देवताओं का भोग लगाया जाता था। भोजन करने वाला व्यक्ति अपने से एक हाथ की दूरी पर भोजन रखकर स्थिरतापूर्वक शांतचित्त होकर ही भोजन करता था। भोजन करने से पहले तथा भोजन करने के उपरांत दो बार आचमन किया जाता था। सामान्यतः भोजन दिन में दो बार करने के ही निर्देश दिये गये[3] लेकिन स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से भोजन में संयम रखने को भी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण[4] में ग्रहण किये जाने वाले भोजन की मात्रा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि संतुलित भोजन शरीर को स्वस्थ बनाता है लेकिन अगर यह अधिक लिया जाए तो यह शरोर को नुकसान पहुंचाता है और यदि भोजन कम लिया जाए तो शरीर स्वस्थ नहीं रहता इसलिए हमें भोजन कम अथवा अधिक ग्रहण न करके सन्तुलित मात्रा में ही ग्रहण करना चाहिए। निराहार रहकर व्रत करने के उल्लेख भी प्राप्त होते हैं।[5] भोजन ग्रहण करने सम्बन्धित नियम भी बनाए गये थे। जूठा भोजन त्याज्य माना जाता था, लेकिन सामूहिक भोज में मित्र एक–द्सरे का जूठा प्रयोग कर लेते थे। पति–पत्नी को एक साथ भोजन करने की आज्ञा नहीं थी। महिलायें प्रायः पुरूष सदस्य की उपस्थिति में भोजन नहीं करती थी।[6] भोजन ग्रहण करने सम्बन्धित अन्य नियम भी प्रचलित थे। अनार्यों के साथ भोजन व्यवहार पाप माना गयज्ञ[7] इस प्रकार के नियमों को तोड़ने वालों के लिए दण्ड विधान था। जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है।[8] इन नियमों के अतिरिक्त वैदिक काल में भोजन से सम्बन्धित शिष्टाचार का भी विशेष ध्यान रखा जाता था। इस समय अतिथि सत्कार को पूर्ण महत्त्व प्रदान किया गया। यहां तक कि

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

भगवान अग्नि को भी ऋग्वेद[9] में अतिथि कहा गया है। एक भूखे व्यक्ति को भोजन दिए बिना भोजन करना पाप समझा जाता था। अतिथि को भोजन कराना उतना ही प्रशंसनीय माना जाता था जितना कि स्वंय भगवान की उपासना की जा रही हो।[10] अतिथि को बिना घृणा और संदेह के भोजन कराने को यज्ञ कार्य जितना पवित्र कर्म बताया गया।[11] विद्यार्थियों से भी यह आशा की जाती थी कि वह अपने लिए खाद्य पदार्थ भिक्षा मांग कर लाए, समझा जाता था कि इससे उनमें आतिथ्य–सत्कार को भावना का विकास होगा।[12]

इस काल में लोग भोजन करते समय स्वच्छता, शुद्धता तथा नियमों का भी पूर्ण ध्यान रखते थे। भोजन करते समय मन में लालसा, क्रोध, घृणा, द्वेष, लोभ, व्यग्रता, घबराहट आदि भावनाएं न हों तथा उसे भोजन की प्रशंसा करनी चाहिए।[13] मेजबान के लिए कहा गया है कि उसको भोजन की पहले ही विशेषता घोषित नहीं करनी चाहिए।[14] भोजन करते समय भी विशेष ध्यान रखने को कहा गया था। निर्देश था कि भोजन करते समय मौन रहना चाहिए, तथा भोजन करते समय मुहँ से किसी भी पकार की ध्वनि नहीं निकलनो चाहिए। कहा गया है कि मुँह में ग्रास डालते समय हाथ की पांचों अंगुलियों के सिरों का सहारा लेना चाहिए। रोटी को अपने दांतों की सहायता से काटकर टुकड़े करना, खड़े होकर अथवा आगे की ओर झुककर पानी पीना भी असभ्यतापूर्ण माना जाता था। यह भी निर्देश था कि व्यक्ति को परोसे हुए भोजन पात्र का सम्पूर्ण भोजन न खाकर कुछ छोड़ देना चाहिए। लेकिन यदि भोजन में दही, मधु, घृत, दूध हो तो पात्र में इन्हें छोड़ना आवश्यक नहीं था।[15] उत्सवों, समारोहों में होने वाले सामूहिक भोजों में भोजन करते समय पालन किये जाने वाले नियम और शिष्टाचार के उल्लेख भी सूत्रों में प्राप्त होते हैं। आपस्तंब धर्मसूत्र[16] में कहा गया है कि सामूहिक भोजन में सभी को एक साथ भोजन आरम्भ करना चाहिए और जब सभी लोग भोजन कर लें तब एक साथ उठें। यदि कोई व्यक्ति अन्य लोगों के खात हुए ही उठ जाता था तो अन्य लोग भी भोजन करना बंद कर देते थे। अतः इसी कारण से सामूहिक भोजन करते समय उठ जाने वाले व्यक्ति के साथ भोजन नहीं करने का निर्देश दिया गया था। यह भी कहा गया है कि सामूहिक भोज में किसी योग्य व्यक्ति को अयोग्य लोगों के साथ बैठकर भोजन नहीं करना चाहिए। इस दृष्टि से पंक्ति को पावन और पंक्ति को दूषित करने वाले लोगों की पहचान के लिये नियम बनाए गए थे। वेदों के ज्ञाता, विद्यार्थी, उदार हृदय वाले, दानशील, जो सौ वर्ष के हों तथा आदर्श चरित्र के महानुभावों को पंक्तिपावन की सूची में रखा गया था और पूर्व जन्म के पाप के कारण इस जन्म में घृणास्पद फल भोगने वालों को पंक्तिदूषक कहा गया। भोजन की शुद्धता पर भी विशेष ध्यान रखा जाता था। सूत्रकार खाद्य पदार्थों की स्वच्छता को पवित्रता के साथ घनिष्ठता के साथ जोड़ने के निर्देश दते हैं। खाद्य पदार्थों को अपवित्र वस्तुओं या प्राणियों के स्पर्शमात्र

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

से ही दूषित होना माना जाने लगा। त्याज्य वस्तुओं जैसे प्याज, लहसुन, शलजम आदि से किसी खाद्य वस्तु से स्पर्श हो जाता तो वह खाद्य नहीं रह जाता था। अपराधी, शराबी, पागल आदमी, जो व्यक्ति अपन पुत्र से वेद की शिक्षा लेता हो, पैर से स्पर्श हुआ या फिर पक्षी चोंच मार जाए, गाय अथवा कुत्ता भोजन को स्पर्श कर दे, ऐसा भोजन खाने के योग्य नहीं माना जाता था। इसके साथ–साथ जिसके घर में किसी दुर्घटना के कारण शोक हो या शिशु का जन्म हुआ हो उसक घर का भोजन भी ग्रहण नहीं किया जाता था।[17] जिस व्यक्ति में किसी भी प्रकार का दोष होता था। उसके द्वारा दिया गया अन्न भी सर्वथा त्याज्य बतलाया गया था।[18] भोजन के अशुद्ध होने के लिए स्पर्श होना ही आवश्यक नहीं था यदि भोजन ग्रहण करते समय भी यदि उसे कुत्ता देख ले या भोजन करने वाला ही चाण्डाल, कुत्ता, कौवा, आदि देख ले, तो वह खाना छोड़ देता था। गंदी खाद में उत्पन्न वस्तुओं को भी अभक्ष्य माना जाता था।[19] इस समय सूत्रकारों ने शुद्ध–अशुद्ध भोजन के लिए कुछ व्यवहारिक नियम भी बनाए थे। यह व्यवस्था की गई थी कि यदि किसी धार्मिक अवसर, समारोह, विवाह इत्यादि के समय बनाये गए भोजन को कोई पशु इत्यादि दूषित कर दे तो भोजन का दूषित हिस्सा निकाल दें और बाकी बचे भोजन पर पानी छिड़ककर शुद्ध कर लें। इस प्रकार बचा हुआ भोजन शुद्ध माना जाता था।[20] इसके अतिरिक्त सूत्रकारों ने विभिन्न वर्णों, जातियों या विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करने वालों के साथ भोजन व्यवहार के नियम भी निश्चित किये थे। शिल्पकार, श्रमिक, चिकित्सक तथा सूदखोर का भोजन ग्रहण करना निषिद्ध माना जाता था। वैदिक शिक्षा पूरी करके आने वाला ब्राह्मण विद्यार्था अन्य जातियों के व्यक्तियों से अन्न ग्रहण नहीं कर सकता था। खाना खाते समय यदि किसी शूद्र ने स्पर्श कर दिया हो तो भोजन को बीच में छोड़कर उठ जाने का निर्देश था।[21] इसके अतिरिक्त सूत्रों में अपने शिष्यों को अपना झूठा भोजन देने वाले, एक नपुंसक, राजा का संदेशवाहक, यज्ञ के लिये अनुपयुक्त ब्राह्मण व तपस्वी, ब्राह्मण जो नियमानुसार जीवनयापन न करता हो उसका भोजन ग्रहण करना निषिद्ध बताया गया।[22] सूत्र साहित्य में उल्लेखित अन्य विवरणों से विदित होता है कि कुछ नियमों के अन्तर्गत सभी जातियों के सदस्यों द्वारा दिया गया भोजन स्वीकार किया जा सकता था।[23] आपस्तम्ब धर्मसूत्र यह नियम शूद्रों पर लागू नहीं करता जब तक कि वह धर्म में दिक्षित न हो जाए। अनेक परिस्थितियाँ ऐसी थी जिससे कि सभी जातियों के मध्य खान–पान व्यवहार स्वतंत्र रूप से चलता था। विपत्ति के समय ब्राह्मण शूद्र द्वारा प्रदत्त भोजन ग्रहण कर सकता था।[24] भोजन सम्बन्धित इन नियमों के अतिरिक्त सूत्रकाल में अतिथि–सत्कार को भी पूर्ण महत्व दिया गया है। उपदेशक, यज्ञ कराने वाला पुजारी, ससुर तथा राजा को विशिष्ट अतिथि का स्थान प्राप्त था। बिना भगवान को भोग लगाए, तथा ब्राह्मणों और अतिथियों को भोजन कराए बिना गृहस्थ द्वारा भोजन करना अनुचित माना जाता था। यहां तक कि

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

अपने भोज्य पदार्थों में से कुछ अंश जीव–जन्तुओं के लिए भी छोड़ने के निर्देश दिए गए थे।[25] महाकाव्यों में भोजन व्यवहार आदि विषयों पर अनेक उल्लेख मिलते हैं। इस समय शास्त्रानुगत खान–पान पर विचार किया गया है। इन विचारों को ध्यान में न रखकर भोजन करना अनुचित माना जाता था। अतः कामना की जाती थी कि सभी लोग शास्त्रानुगत ही भोजन करें। भोजन करने से पहले पैरों को भी साफ करने का निर्देश दिया गया था क्योंकि भीग पैर भोजन करने से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवन धारण करता है। बिना हाथ–मुँह धोए और पैर साफ किये भोजन करने वाला व्यक्ति अपवित्र माना जाता था। ऐसी अवस्था में उसे अग्नि, गौ तथा ब्राह्मण इन तीन तेजस्वियों को स्पर्श करने को अनुमति नहीं थी। प्रत्येक दिशाओं को तरफ मुँह करके भोजन करने से प्राप्त होने वाले फल का भी उल्लेख मिलता है। कहा गया है कि पूर्व की ओर मुंह करके भोजन करने से आयु की वृद्धि होती है, दक्षिण की ओर मुँह करके भोजन करने से यश प्राप्त होता है, पश्चिम की ओर मुँह करके भोजन करने से धन की प्राप्ति तथा उत्तर की ओर मुँह करके भोजन करने से सत्य की वृद्धि होती है। परोसे गये भोजन की निंदा करना अनुचित माना जाता था। बायें हाथ से परोसा गया भोजन त्याज्य माना गया था।[26] भोजन को मिल–बांटकर ही खाने की आज्ञा थी। गृहस्थ से यह आशा की जाती थी, कि वह स्वयं भोजन करने से पहले भगवान तथा ब्राह्मण को भोजन अर्पण करे, ऐसा न करना पाप समझा जाता था। देवताओं को वही भोग लगाने का निर्देश दिया गया था, जो गृहस्थ स्वयं के लिए बनाता है।[27] स्वादिष्ट भोजन अकेला खाना अनुचित माना जाता था। अपने इष्ट–मित्रो को देने उपरांत ही खाने की आज्ञा थी।[28] अतिथि, पत्नी, पुत्र और सेवक को भी भोजन कराए बिना स्वयं भोजन लेना भी अनुचित था। यहां तक कहा गया कि जो अपने सहजनों को भोजन न देकर अकला ही भोजन करता है, वह विष ही खाता है।[29] कहा गया कि परिवार के सदस्या, अतिथि, नौकरों, बच्चों, बूढ़ों को भोजन कराया जाये वही भोजन कर्ता को भी करना चाहिए। अपने लिए अलग से कुछ भी बनवाना निषिद्ध माना गया था। सबको, खिलाने के पश्चात् बचे हुए भोजन की तुलना 'अमृत' से की गई है।[30] इनके अतिरिक्त किसका अन्न ग्रहण किया जा सकता है अथवा किसका ग्रहण नहीं किया जा सकता, इस विषय पर भी नियम प्रचलित थे। प्रत्येक प्रकार का अन्न ग्रहण नहीं किया जा सकता था। ब्राह्मण के लिए क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र का अन्न ग्रहण करना अनुचित माना जाता था, क्योंकि क्षत्रिय का अन्न तेज का नाश करता है एवं शूद्र का अन्न ब्राह्मणत्व नष्ट करता है। संभवतः यह नियम प्रत्येक परिस्थिति के लिए नहीं था क्योंकि हमें कई उल्लेख प्राप्त होते हैं, जब ब्राह्मणों द्वारा क्षत्रिय के हाथों अन्न ग्रहण किया जाता था। द्रौपदी स्वयं ब्राह्मणों को अपने हाथों से बनाया भोजन कराती है। राजा पौष्य ने उतंक को अन्न दान दिया था।[31] अनेक व्यक्तियों तथा अनेक प्रकार के व्यवसायिकों का अन्न भी ग्रहण करना अनुचित

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

माना गया था। कहा गया है कि सुनार, पति–पुत्र हीन नारी, सूदखोर, दुश्चारिता स्त्री, वैश्या, स्त्री से वशीभूत पुरुष, अग्निषोमीय जप करने वाला यजमान, कंजूस, बढ़ई, चर्मकार, धोबी, चिकित्सक, राक्षसोपासक, चित्रकार, स्त्रीजीवी, परिवित्ती, बंदी, जुआरी का अन्न अग्राह्य होता है। चिकित्सक के अन्न को विष्ठा के समान, गणिका का अन्न मूत्र के समान कहा गया है। विद्या द्वारा जीविकोपार्जन करने वालों को शूद्र मानकर उनका अन्न ब्राह्मणों के लिए निषेध माना गया था। गौहत्या करने वाला, ब्रह्महत्या करने वाला तथा नगर रक्षक का अन्न भी अपवित्र मानकर ग्रहण करना अनुचित माना गया था। शराबी, गुरुतल्पी का अन्न भी लेना पाप माना गया था। रजस्वला स्त्री का स्पर्श किया हुआ अन्न, सार निकला हुआ अन्न भक्षण करना तथा ऐसा भोजन जिसे कोई तरसती हुई नजरों से देख रहा हो उसे दिये बिना भोजन खाना निषेध माना गया था। इसके अतिरिक्त स्त्री का झूठा, शूद्र, बिल्ली, कौव्वा, चूहों का झूठा अथवा जिस भोजन में बाल गिर गया हो ऐसा भोजन ग्राह्य नहीं था। प्रेत श्राद्ध का अन्न, सूतिका का अन्न व अशौची का अन्न भी अभक्ष्य बताया गया है। शत्रु के श्राद्ध का अन्न भी ग्रहण न करने का निर्देश था। यह भी कहा गया है कि बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह किसी अपवित्र मनुष्य के पास अथवा सत्पुरुषों के सामने भोजन न करे। इन सभी नियमों का पालन करने पर बल दिया गया तथा कहा गया है कि धर्मशास्त्रों में जिनका निषेध किया गया है ऐसे भोजन को पीठ पीछे भी छिपाकर ग्रहण नहीं करना चाहिए।[32] तत्कालिन जन द्वारा जहां अन्नपान की शुद्धता को बनाए रखने पर बल दिया गया, वहीं उतना ही महत्त्व सामाजिक सदाचार को भी दिया जाता था। अतिथि–सत्कार को विशेष महत्त्व दिया गया था। कहा गया है कि कभी भी स्नेह अथवा द्वेष के भाव से किसी भी अतिथि का निरादर नहीं करना चाहिए। तपस्वी भी आगंतुक का अतिथि सत्कार पूरे मनोभाव से करते थे। राम और भरत का आतिथ्य–सत्कार पूर्ण ससम्मान और यथासामर्थ्य किया गया था। विश्वामित्र और उनकी सेना के सम्मान में महर्षि वशिष्ठ ने भी विविध प्रकार का राजतुल्य भोज दिया था। यह भोजन 'षड्रस' व्यंजनों से बनाया गया था।[33] इस समय विशाल सार्वजनिक भोजों का आयोजन भी किया जाता था, जिनमें खाद्य एवं पेय पदार्थों का अटूट भंडार प्रस्तुत किया जाता था, और लाखों नर–नारी इच्छापूर्वक भोजन कर तृप्त होते थे। आमंत्रित व्यक्तियों के साथ शिष्टतापूर्ण तथा सौजन्यपूर्ण व्यवहार किया जाता था, क्योंकि भोज को एकमात्र जिह्वा का आनन्दपूर्ण स्वाद न मानकर देवताओं के लिए अभियुक्त नैवेद्य तथा अतिथियों, मित्रों एवं बन्धु–बान्धवों का प्रीतिपूर्ण आहार माना जाता था।[34] सार्वजनिक भोजों का आयोजन काफी वैभवतापूर्ण ढंग से कराया जाता था, जिनमें भोजन शिष्टतापूर्ण तथा नियमानुसार परोसा जाता था। दशरथ के अश्वमेघ समारोह में ब्राह्मणों को अलंकृत पुरुषों ने भोजन परोसा था और उनकी सहायता दूसरे मणिजड़ित कुण्डलधारी सेवक कर रहे थे।[35] भोज की वैभवता नैमिषारण्य में राम के

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

अश्वमेघ महोत्सव में भी दर्शनीय हो उठती है। यहां पर भी वृहत् भोज का आयोजन किया गया था। उपस्थित लोगों के लिए एक लाख बैलों पर चावल, दस हजार बैलों पर तिल, मूंग, चना, कुलथी, उड़द, नमक और इसी प्रमाण से घी, तेल, सुगंधित द्रव्य, रसोईये और नौकर–चाकर भेजे गये थे। राम सेवकों को आज्ञा देते हैं, जब तक याचक संतुष्ट न हों उनकी इच्छानुसार भोजनादि दिये जाये। वहां गुड़, शक्कर इत्यादि के विविध प्रकार के उच्चावच्च पेय एवं भोज्य पदार्थ बनाए जाते हैं। उस यज्ञ में कोई मलिन, दीन–दुर्बल दिखाई नहीं पड़ता था। सबको इच्छानुसार भोजन, वस्त्र, स्वर्ण, रत्न दान दिया जाता था। इसी प्रकार राम के राज्याभिषेक के अवसर पर एक लाख द्विजों को प्रीतिभोज देने की योजना बनाई गई थी।[36] बौद्ध इस मत में विश्वास नहीं करते थे कि किसी निम्न जाति के व्यक्ति के द्वारा स्पर्श करने से भोज्य पदार्थ अशुद्ध हो जाते हैं। स्वयं महात्मा बुद्ध ने निम्न समझी जाने वाली जाति के व्यक्ति के घर भोजन किया था।[37] लेकिन सामान्यतः समाज में जातियों के आधार पर खान–पान व्यवहार निश्चित् था। जातकों में ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों के मध्य भी खान–पान निषेध का संकेत मिलता है। लेकिन साधारणतः ब्राह्मण–क्षत्रियों के मध्य खान–पान प्रचलित था।[38] अपने से निम्न जाति के व्यक्ति के साथ ब्राह्मण–क्षत्रिय सामान्यतः खान–पान व्यवहार नहीं करते थे। एक क्षत्रिय का वर्णन मिलता है जो अपनी दासी से उत्पन्न कन्या के साथ भोजन करने से मना कर देता है। एक जगह ब्राह्मण द्वारा पश्चाताप करने का उल्लेख मिलता है, क्योंकि उसने चांडाल का भोजन कर लिया था।[39] भोजन से सम्बंधित अन्य सामान्य नियम भी प्रचलित थे। किसी भी व्यक्ति को फलाहार अकेले लेने की आज्ञा नहीं थी। भिक्षु ऐसे भोजनालयों में भोजन करते थे, जहां पर स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था।[40] जैन ग्रंथों में भी खान पान प्रचलित विभिन्न नियमों का उल्लेख किया गया है। भोजन करने के स्थान की स्वच्छता का ध्यान रखा जाता था, उस स्थान को हरियाली से लीप–पोतकर उस पर कमल के पत्ते बिछाये जाते और पुष्प बिखेरे जाते थे। उसके पश्चात् कटोरा, कट्ठोरग और मंकुय आदि पात्र यथा स्थान रखे जाते थे। तत्पश्चात् लोग भोजन करने बैठते थे। महानसशाला में अशन, पान, खाद्य, स्वाध आदि विविध प्रकार के भोजन तैयार किये जाते तथा साधु–सन्तों, अनाथों, भिखारियों आदि को बांटे जाते थे। राहगीरों और परिव्राजकों को भी यथेष्ट अन्न दान दिया जाता था।[41] जैन भी बौद्धों की भाँति इस विषय पर सहमत थे कि किसी जाति विशेष के व्यक्ति द्वारा प्राप्त भोजन अशुद्ध नहीं होता अथवा उसके साथ भोजन करने या उसके द्वारा स्पर्श होने पर भोज्य पदार्थ अशुद्ध नहीं होता। उत्तराध्ययन सूत्र[42] में आया है कि यदि मेहमान चांडाल ही क्यों न हो उसे पूर्ण सम्मान के साथ भोजन करना चाहिए। लेकिन लगता है कि समाज में इन उपदेशों का पालन कदाचित ही होता होगा। एक अन्य स्थान पर उल्लेख मिलता है कि ब्राह्मण ने एक सन्यासी को इस कारण से भोजन नहीं दिया,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

क्योंकि वह चांडाल जाति का था। जैन ग्रंथों में मुख्यतः जैन भिक्षुओं के लिए आहार विषयक नियमा का उल्लेख मिलता है। विशेष रूप से इन नियमों में भिक्षुओं को संयमित जीवन जीने का ही उपदेश दिया गया है। कहा गया है कि उन्हें उतना ही भोजन करना चाहिए जितना कि उस समय जीवित रहने के लिए आवश्यक हो। उपवास को विशेष महत्त्व दिया गया था। जैन भिक्षु इस बात पर विश्वास रखते थे कि उपवास करने से शरीर शुद्ध होता है। मौर्य काल में भी प्रचलित प्राचीन भारतीय मान्यताओं तथा नियमों के अनुसार ही भोजन किया जाता था। भोजन में शुद्धता तथा स्वच्छता का वि"ोष ध्यान रखा जाता था। भोजन करने के स्थान को साफ, स्वच्छ कर, उचित विधि से मेज इत्यादि लगाकर व्यवस्थित किया जाता था। यूनानी यात्री मैगस्थनीज[43] को भी भारतीयों की यह भोजन व्यवस्था आकर्षित करती है, उनके अनुसार ''जब भारतीय लोग भोजन के लिए बैठते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख एक मेज रखी जाती है जो तिपाई की आक'ति की होती है। तिपाई पर सोने का एक प्याला रखा जाता है, जिसमें अनेकानेक व्यंजन परोसे जाते है, जिन्हें भारतीय पाक विधि के अनुसार तैयार किया जाता है।'' निष्चय ही यात्री का यह विवरण धनवान परिवार से सम्बन्धित है किन्तु सामान्य लोगों के द्वारा भी भोजन करने की विधि में इससे कुछ समानता अवष्य ही रही होगी। मैगस्थनीज यद्यपि भारतीयों के अनेकानेक गुणों की प्रषंसा करते हैं, लेकिन भारतीयों की भोजन पद्धति मैगस्थनीज को पसन्द नहीं आ सकी। उन्होने भारतीय भोजन प्रणाली को षिष्ट अथवा सामाजिक नागरिक जीवन के विरूद्व बताया है। उसने लिखा है कि ''कुछ काम उनके ऐसे हैं, जिन्हें उचित नहीं कहा जा सकता, उदाहरण के लिए वे भोजन अकेले ही किया करते हैं, क्योंकि एक साथ भोजन करने के लिए उनका कोई निषचित समय नहीं रहता है। प्रत्येक व्यक्ति जब चाहता है भोजन कर लेता है, यदि इसके विपरीत रिवाज होता अर्थात् सब एक साथ और एक निष्चित समय पर भोजन किया करते, तो यह सामाजिक तथा षिष्ट जीवन के लिए हितकर होता।''[44] मैगस्थनीज का यह उद्धरण प्रचलित भारतीय मान्यताओं, शिष्टाचारों तथा मर्यादाओं से बिल्कुल भी मेल नहीं खाता है। प्राचीन काल स ही भारतीय दिन में निश्चित समय पर तथा बंधु–बांधवों के संग मिल–जुलकर एक साथ ही सप्रेम भोजन करते आ रहे हैं। संभवतः मैगस्थनीज को संयोगवष अनेक बार कुछ ऐसे अनुभव रहे हों, जिससे कि उसे भारतीयों की भोजन विधि अव्यवस्थित लगी। इसके अतिरिक्त संभव ह कि उसे सामान्य समाज में प्रचलित भारतीय भोजन–विधि से परिचित होने का अवसर ही न मिला हो। कौटिल्य के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि इस समय भी समाज में प्राचीन भारतीय मान्यताओं के अनुसार शास्त्रों के अनुसार ही भोजन किया जाता था। भोजन में संयम रखना षिष्ट व्यक्तियों के व्यवहार के अनुकूल माना जाता था। विद्यार्थियों और तपस्वियों से यह आषा की जाती थी कि वह भिक्षा पर निर्भर रहें। तपस्वी तो मुख्यतः जड़, फल

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

और कन्दमूलों से अपना जीवन निर्वाह करते थे। उन्हें केवल उन्हीं फलों का सेवन करने की आज्ञा थी जो फल पेड़ों पर ही पकते थे तथा स्वयं ही पककर गिरते थे।[45] विद्यार्थी मांसाहार नहीं करते थे। गर्म और अत्यधिक मसालों वाले भोजन का भी परहेज किया जाता था।[46] अभक्ष्य माने जाने वाले भोज्य ब्राह्मण के लिए तो पूर्णतः निषेध था ही यहां तक कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण को 'अपेय' अथवा 'अभक्ष्य' पदार्थ खिला दे तो उसे भी दण्ड देने का विधान किया गया था।[47] कौटिल्य [48] आर्य, अवर (आर्यों की तुलना में कम स्थिति रखने वाले) स्त्री तथा बालक के लिए एक दिन के संतुलित तथा संयमित भोजन का भी उल्लेख करते हैं। उनके अनुसार एक आर्य के लिए एक दिन के भोजन में एक प्रस्थ तण्डुल, चौथाई प्रस्थ सूप और सूप का चौथाई भाग घी या तेल होना चाहिए। अवर के लिए तण्डुल की मात्रा तो एक प्रस्थ ही है, पर सूप की मात्रा चौथाई प्रस्थ न होकर प्रस्थ का छठा भाग है। इसी प्रकार स्नेह (चिकनाई) की मात्रा भी उनके लिए कम रखी गई है। स्त्रियों के लिए ऊपर लिखी मात्राओं (जो कि आर्य और अवर के लिए निर्धारित हैं) से चौथाई मात्रा में पर्याप्त मानी गई और बच्चों के लिए आधी। भोजन को मिल–बांटकर खाना तथा अतिथि–सत्कार करना अब भी गृहस्थ के लिए परम आवष्यक क'त्य था। कौटिल्य[49] उल्लेख करता है कि एक ग'हस्थ को, लोहे का कार्य करने वालों को और मजदूरों को चोकर, दास, नौकर और भोजन बनाने वाले रसोईये को टूटे हुए चावल के टुकड़े देने चाहिए। यद्यपि यह व्यवस्था प्रचलित भारतीय मान्यता के अनुसार कि एक गृहस्थ को चाहिए कि वह अपने दासों इत्यादि को वही भोजन देवे जो वह करता है, के अनुरूप नहीं है, लेकिन लगता है कि कौटिल्य उसी व्यवस्था का उल्लेख करता है जो सामान्यतः समाज में प्रचलित थी। अन्य भोजन सम्बन्धित मान्यताऐं अब भी चली आ रही थी। ग'हस्थ अपना भोजन खाने से पूर्व नौकरों तथा छोटे प"ाु–पक्षियों इत्यादि के लिए भोजन रख देते थे।[50] अतिथि–सत्कार और भोजन खाने से पूर्व भगवान को भोग लगाना एक गृहस्थ तथा तपस्वी के लिए परम आवष्यक कर्तव्य माना जाता था।[51] कहा जा सकता है कि खान–पान सम्बन्धी नियम भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन की एक महत्त्वपूर्ण वि"ोषता रही है। भोजन करते समय भोजन की स्वच्छता, उसकी पौष्टिकता का ध्यान रखा जाता था, साथ ही साथ यह ध्यान भी रखा जाता था कि सम्पूर्ण भोजन प्रक्रिया में सात्विकता, सामाजिक सौहार्द्ध एवं ि"ाष्टाचार भी बना रहे। भोजन नियमों का पालन करना अनिवार्य था क्योंकि इनको धार्मिक कार्यकलापों का ही अंग माना गया था। इसके अतिरिक्त अतिथि सत्कार पूर्ण ससम्मान एवं यथासामर्थ्य करना एक गृहस्थ के लिए एक धार्मिक कर्तव्य के समान था।

1. वही, 7/26/2, 7/6/1,
2. ऋग्वेद, 1/187/2; तैत्तिरीय ब्राह्मण, 2/1/11,
3. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29; ऋग्वेद, 6/30/3; छान्दोग्य उपनिषद्, 5/2/2,
4. शतपथ ब्राह्मण, 10/4/1/4,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

5. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/11; शतपथ ब्राह्मण, 2/1/4/1,
6. छान्दोग्य उपनिषद्, 1/10; शतपथ ब्राह्मण, 10/5/2/9, 1/9/2/12,
7. पंचविश ब्राह्मण, 17/1/9, 12/3,
8. ऐतरेय ब्राह्मण, 7/29,
9. ऋग्वेद, 4/26/3, 1/51/6, 10/117/6, 10/117/2,
10. शतपथ ब्राह्मण, 7/1/3/4,
11. अथर्ववेद, 9/6/13; शतपथ ब्राह्मण, 7/3/2/1; तैत्तिरीय उपनिषद्, 1/2/2, 3/10,
12 गोपथ ब्राह्मण, 1/2/1–8,
13. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/5, 73/6; बौधायन गृह्यासूत्र, 2/3/5/21; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 3/62–63,
14. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 11/29–30,
15. गौतम धर्मसूत्र, 9/59; बौधायन धर्मसूत्र, 2/7/36, 2/6–8; आपस्तम्ब धर्मसूत्र ,2/8/19–20, 1/11/1/31,
16. बौधायन धर्मसूत्र, 1/5/17/2, 1/5/16/33, 2/7/17–22,
17. बौधायन धर्मसूत्र, 2/7/31–32, 7/13/2; बौधायन गृह्यासूत्र, 2/3/5; आपस्तम्ब गृह्यासूत्र, 6/16,
18. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/6/18/16–23,
19. वही, 1/5/16/31, 1/5/17/25–27; गौतम धर्मसूत्र, 10/32–33,
20. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 14/25–27,
21. आपस्तम्ब धमसूत्र, 1/6/18/27–33, 1/6/18/9–12,
22. वही, 1/6/18/28–33,
23. गौतम धर्मसूत्र, 12/1,
24. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/6/18/13–15, 1/6/18/6; गौतम धर्मसूत्र, 17/1, 17/5; वसिष्ठ धर्मसूत्र, 20/19,
25. खादिर गृह्यासूत्र, 1/5/39, 1/5/22–25; पारस्कर गृह्यासूत्र, 6/1/4/1; मानव गृह्यासूत्र, 1/1/2,
26. महाभारत, शान्ति पर्व, 36/31–33; महाभारत, अनुशासन पर्व, 104/89,
27. वाल्मीकि रामायण, 2/59/22, 2/103/30, आरण्यक काण्ड, 56/23, 2/50,
28. वही, 2/94/60,
29. महाभारत, अनुशासन पर्व, 104/97,
30. वही, शान्ति पर्व, 193/9; महाभारत, अनुशासन पर्व, 93/13, 104/41, 93/15,
31. वही, अनुशासनपर्व, 135/2–3; महाभारत, वन पर्व, 50/10, 3/83; महाभारत, आदि पर्व, 192/4, 3/115,
32. वही, शान्ति पर्व, 36/26–31; महाभारत, अनुशासन पर्व, 135/14–19, 104/89–90, 198/5/11,
33. वाल्मीकि रामायण, 1/13/15, 7/73/3, 2/91/73, 1/51/22,
34. एस0 के0 नानूराम व्यास, पूर्वोक्त, पृ0 82,
35. वाल्मीकि रामायण, 2/12/96,
36. वही, 2/3/14–16,
37. दीघ निकाय, पृ0 99,
38. सम्भव जातक, 5/27; जुण्ह जातक, 4/96; जातक, 1/425, 4/484, 2/319–20,
39. जातक, 179, 4/388, 4/144, 2/82,
40. जातक, 537, 31,
41. निशीथ चूर्णी पीठिका, पृ0 51; निशीथ सूत्र, 9/7; ज्ञातृधर्मकथा, 13, पृ0 143; उत्तराध्ययन टीका, 13, पृ0 188,
42. उत्तराध्ययन सूत्र, 12, 16/7, 32/11, 1/32,30/8,
43. जे0 डब्लू0 मैक्रिण्डल, पूर्वोक्त, पृ0 74,
44. वही, पृ0 70,
45. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 1/3/10–12, 2/25/41–42,
46. जे0 डब्लू0 मैक्रिण्डल, पूर्वोक्त, पृ0 98,
47. कौटिल्य अर्थशास्त्र, 4/13,
48. वही, 2/15,
49. वही, 2/15/80–81,
50. वही, 2/15/9,
51. वही, 1/3/9, 11,

International Journal of Research in Economics and Social Sciences(IJRESS)
Available online at: http://euroasiapub.org
Vol. 12 Issue 12 December- 2022
ISSN: 2249-7382 | Impact Factor: 8.018|
(An open access scholarly, peer-reviewed, interdisciplinary, monthly, and fully refereed journal.)

सहायक ग्रंथ

आचार्य, दीपंकर	:	कौटिल्यकालीन भारत, उत्तर प्रदे"ा हिन्दी संस्थान, लखनऊए 1989
उपाध्याय, बलदेव	:	वैदिक साहित्य और संस्कृति, शारदा संस्थान, वाराणसी, 1981
चतुर्वेदी, पर"ाुराम	:	बौद्ध साहित्य की सांस्कृतिक झलक, साहित्य भवन, इलाहाबाद, 1958
अवस्थी, श"ाी	:	प्राचीन भारतीय समाज, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1986
जौहरी, मनोरमा	:	प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था, भारतीय विद्याभवन प्रका"ान, बम्बई, 1969
पोथरी, भगवती प्रसाद	:	मौर्य साम्राज्य का सांस्कृतिक इतिहास, हिन्दी समिति, लखनऊ, 1972
भंडारकर, डी. आर.	:	'अ"ाोक' एस. चाँद एण्ड कम्पनी, दिल्ली, 1960
भट्टाचार्य, सुखमय	:	महाभारत कालीन समाज, लोक भारती इलाहाबाद, 1986
थापर, रोमिला	:	प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, इतिहास ग्रंथा"ाल्पी, नई दिल्ली, 2001
Majumdar, R.C. Pushalkar, A.D.	:	The Vedik Age, Bombay, 1965
Upadhyaya, B.S.	:	India in the age of Kalidasa, Allahabad, 1947
Vyas, S.K.N.	:	India in the Ramayana Age, Atma Ram & Sons, Delhi, 1967
Wagle, Narendra	:	Society at the time of Buddha, Bombay, 1966
Sastri, Udaivir	:	Arthasastra of Kautilya, Lahore, 1925
Sharma, B.N.	:	Social life in Northern India, M.M. Publication Delhi, 1961
Apte, V.M.	:	'Social and Economic Conditions' The Vedik Age, Bombay, 1965